International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भारतीय कला व सौन्दर्य की अवधारणा

डा0 महेश कुमार
एसो0 प्रो0 चित्रकला विभाग,
जे.वी. जैन कॉलेज
सहारनपुर।
E-mail :mahesh989762@gmail.com

प्राचीन काल में कला या शिल्प के भाव को प्रकट करने हेतु भिन्न–भिन्न देशाों और संस्कृतियों में भिन्न–भिन्न शब्द प्रचलित थे और उनसे भिन्न–भिन्न अर्थ प्रकट होते हैं।

भारत में संस्कृत साहित्य में 'शिल्प' और 'कला' दोनों शब्द समानार्थी रूप में प्रयुक्त हुए हैं। दोनों ही शब्द कला और शिल्प दोनों के लिए प्रयुक्त हुए हैं अर्थात् कला के लिए शिल्प और शिल्प के लिए 'कला' शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में किया गया है। वात्स्यायन ने गीत, वाद्य, नृत्य और आलेख्य (चित्रकला) को कला माना है। साथ ही अन्य कौशल विद्या या शिल्प सम्बन्धी कार्यो यथा घर को फूलों से सजाना, हाथी दांत से गहने बनाना सीना–पिरोना, बेंत और बांस से नाना प्रकार की वस्तुओं का निर्माण आदि के लिए भी 'कला' शब्द का प्रयोग किया है। आचार्य भरतमुनि ने चित्रकला को 'शिल्प' कहा है। कौशीतिकी ब्राह्मण में नृत्य एवं गीत को भी 'शिल्प माना गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में नर्तक, वादक और गायक को शिल्प कहा है। कला विलास, ललित विस्तार, शुक्रनीतिसार आदि प्राचीन ग्रंथों में दी गई विस्तृत सूची से भी यही स्पष्ट होता है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में कला एवं शिल्प शाब्दों को समानार्थी माना गया है 'ललित कला' और 'शिल्प' के रूप में वर्गीकरण बहुत बाद में आधुनिक युग में हुआ। ऐसे में कला और शिल्प का सामान्य अर्थ 'मानवीय कौशल (Human Skill) ही निकलता था, जिसके अंतर्गत अनगिनत मानवीय क्रिया–कलाप व विद्याएं आ सकती हैं। 'कला' शाब्द की उत्पत्ति 'कल' धातु से मानी गयी है जिसका अर्थ 'स्पष्ट वाणी में प्रकट करना' है। इसके अन्य अर्थ गिनना, और संकलन करना है।[2] कलाओं के अर्थ निरूपण, वर्गीकरण, कलाओं की संख्या निर्धारण के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत यूरोपीय चिन्तन अधिक व्यवस्थित व तार्किक है।

भारत में कला के अर्थ व स्वरूप अर्थात् कला–चिंतन अर्थात कलाओं के वर्णन–विवेचन के प्रारम्भिक संकेत सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में मिलते हैं। वैदिक साहित्य में 'कला' शाब्द का प्रयोग भाग या अंश के अर्थ में हुआ है। किन्तु कला की अवधारणा और विविध कलाओं के उल्लेख वेदों में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। वेद स्वयं काव्य कला के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है, ''चित्र, तक्षण तथा वयन (वास्तुब्रह्म या स्थापत्य) आदि कलाओं की (वेदों में) अनेक स्थानों पर चर्चा की गई है और काव्य कला का तो अत्यंत सूक्ष्म–गहन विश्लेषण हुआ है काव्य कला की अधिष्ठात्री है ऊषा (सूर्य देव की पुत्री) जो

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

परवर्ती साहित्य में सरस्वती के रूप में प्रतिष्ठित हुई) जो सुन्दर गीतों की उद्‌बोधक, सुन्दर भावनाओं और समस्त पवित्र विचारों की प्रेरक है। उसका (काव्यकला का) सम्बन्ध एक ओर दिव्य चेतना और हदय के पवित्र एवं मधुर भावों के साथ है और दूसरी और रचना शिल्प के साथ।''[1] इस प्रकार उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल में कला को वह अर्थ, व स्वरूप और गरिमा प्राप्त थी जो वर्तमान में प्राप्त है, यद्यपि कला के हेतु 'कला' शाब्द के स्थान पर शिल्प या अन्य शाब्दों का प्रचलन था। यहाँ यह इंगित है कि कला का सम्बन्ध हदय के पवित्र एवं मधुर भावों की अभिव्यक्ति से है और दिव्य प्रेरणा व कल्पना मानव कौशल, सत्य, शिव, सुन्दर तथा कला तत्व कला के अनिवार्य अंग है। वेदों में संगीत (नाद्‌ब्रह्म) का भी विस्तृत विवेचन है।

वैदिक व उत्तर वैदिक युगों में कला का स्वरूप आध्यात्मिक और उच्च स्तरीय था किन्तु बाद के युग में कला की चर्चा प्रायः काम शाास्त्रीय ग्रंथों में हुई है। प्राचीन काल में संस्कृत साहित्य में प्रायः कला के लिए 'शिल्प' शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन काल में कला व शिल्प का भेद स्पष्ट नहीं था। प्रायः सभी प्रकार के शिल्पों, विद्याओं और कुशलता पूर्वक किए गये कार्यो और निर्माणों (उत्पादों) को कला के अंतर्गत रखा गया है। यही कारण है कि कलाशास्त्र के संदर्भ में कला प्राचीन अनेक शाास्त्रों में कला की लम्बी–लम्बी सूचियां प्रस्तुत की गई हैं। वैदिक, उत्तर वैदिक व महाकाव्य काल के पश्चात अर्थात ऐतिहासिक युग के उपलब्ध ग्रंथों में सर्वप्रथम वात्स्यायन कृत 'कामसूत्र' में कलाओं की चर्चा और 64 कलाओं की प्रथम सूची प्राप्त होती है जो सम्भवतः वात्स्यायन की मौलिक उपलब्धि नही हैं क्योंकि उन्होंने अपने ग्रंथ में अपने पूर्ववर्ती आचार्यो पांचाल, सुवर्णनाभ, दत्तक आदि की भी चर्चा की है जिनके ग्रंथों का आधार लेकर कामसूत्र की रचना की गई। वात्स्यायन के एक पूर्ववर्ती बभ्रु के पुत्र पांचाल ने सर्वप्रथम कलाओं को दो भागों में वर्गीकृत किया था– एक मूल कला और दूसरी आन्तर कला। उन्होंने चौसठ मूल कलाओं और पांच सौ अठारह आन्तर कलाओं की सूची प्रस्तुत की थी। कामसूत्र में भी चौसठ कलाओं की सूची को मान्यता दी गई है। पूर्ववर्ती आचार्यो के ग्रंथ उपलब्ध न होने के कारण यही मान्यता है कि सर्वप्रथम वात्स्यान ने ही चौसठ कलाओं का वर्णन करते हुए समाज की समृद्धि में उनके योगदान की चर्चा की है। वात्स्यान के उल्लेखों से यह पता चलता है कि उस काल में कलाओं की समृद्ध परम्परा समाज में विद्यमान थी। वात्स्यान की कला–सूची में आधुनिक युग में मान्य पाँच ललित कलाओं में से काव्य, संगीत (गीत, वाद्य, नृत्य), आलेख्य (चित्रकला) और वास्तु का उल्लेख मिलता है। वात्ययायन की कला सम्बन्धी अवधारणा में श्रृंगारिकता और उपयोगिता प्रधान तत्व के रूप में विद्यमान है। उनके अनुसार कला जीवन की समृद्धि का प्रमुख उपकरण है जिससे सुख–सौभाग्य, सम्मान की सिद्धि के साथ–साथ व्यक्तित्व का परिष्कार होता है। वात्स्यायन के टीकाकार यशोधर ने वात्स्यायन के पूर्ववर्ती पांचाल के वर्गीकरण और सूची को मान्यता प्रदान की है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वात्स्यायन ने कला की कोई परिभाषा या उसके अर्थ, स्वरूप पर टिप्पणी नहीं की है किन्तु कलाओं सम्बन्धी उनके उल्लेखों के अनुसार कला का अर्थ 'कौशल' या 'हुनर' है। कामसूत्र की सूची में कुछ कलाएं (काव्य, संगीत, चित्र, वास्तु) उच्च स्तर की है जिनमें कौशल या हुनर के साथ–साथ कलाकार की विशेष प्रतिभा और कल्पना का तत्व भी अनिवार्य है।

भारतीय कला और सौन्दर्य की अवधारणा का मूल वेदों में है। वेदों में सौन्दर्य का वर्णन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, जो वैदिक संस्कृति की प्रौढ़ सौन्दर्य दृष्टि को प्रकाशित करता है। यद्यपि वेदों का विवेच्य विषय सौन्दर्य नहीं हैं, किन्तु वेद स्पष्ट रूप से वैदिक संस्कृति की सौन्दर्य चेतना को प्रकाशित करते हैं। यही सौन्दर्य चेतना विभिन्न संस्कृतियों से अग्रसरित होती हुई, आज हमारे मानस में विद्यमान है। विभिन्न युगों और संस्कृतियों ने इसी सौन्दर्य चेतना में तत्कालीन सौन्दर्य तत्वों को जोडने का कार्य किया है। वैदिक वर्णन के आधार पर बाद के युगों मे देवी–देवताओं के स्वरूप निश्चित हुए तत्पश्चात् उनका चित्रों और मूर्तियों में अनुकरण हुआ और कलाओं में देवी–देवताओं के शरीरिक शास्त्र (Iconography) का विकास हुआ। स्वास्तिक, चक्र, पूर्ण कुम्भ, कमल आदि प्रतीक भी वैदिक काल में ही स्थिर हुए जिन्होंने परवर्ती कालों में भारतीय कला को सौदर्न्य और भव्यता प्रदान की। जिन्हे आज हम पूजते हैं वे देवी देवता प्रायः पुराणों की देन हैं और पुराणों का स्वरूप भी बहुत कुछ वेदों से प्रेरित है। इस प्रकार भारतीय जनमानस की धार्मिक सौन्दर्य चेतना भी वस्तुतः वेदों की देन है। वेदों में सौन्दर्य के मधुर और उदात्त दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। ऋग्वेद में सौन्दर्य के मधुर पक्ष के दर्शन उषः सूक्त में तथा उदात्त पक्ष का चित्रण मरूत, पुरूष, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, रूद्र, वरूण आदि से सम्बन्धित सूक्तों मे भव्य रूप में मिलता है।

उषः सूक्त में प्रकृति के गोचर सौन्दर्य का मार्मिक वर्णन है सूर्य पुत्री देवी उषा, जो अरूणोदय की देवी हैं, के रूप सौन्दर्य को समर्पित एक मन्त्र में कहा गया है कि आलोक वसना उषा प्राची दिश में उदित होकर अपने सौन्दर्य को अनावृत करती है। उसकी तनद्युति सद्यःस्नाता की भाँति उज्जवल है व रात्रि के शयाम आवरण को भंगकर वह अपने रूप को प्रकट करती है। इसके अतिरिक्त भी ऋग्वेद में देवी उषा को कई सुन्दर गीत समर्पित किये गये हैं, जिनमें देवी उषा के बहाने से प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। रात्रि देवी के लिये ऋग्वेद में एक सुन्दर गीत समर्पित किया गया है। एक अन्य देवी अरण्यानि की भी एक मंत्र में प्रंशसा की गई है। परन्तु पूजा पद्धति में इन देवियों में से किसी को भी अधिक महत्व नहीं मिला है। देवताओं के सहयोगी मरूतों के विराट सौन्दर्य एवं तेज के विषय में ऋग्वेद में अनेकों उल्लेख हैं। उनके विराट रूप सौन्दर्य और अलंकरण के विषय में कहा गया है कि वे स्वर्ण वर्ण है, अरूण आभा से दीप्त हैं। अग्नि के समान तेजस्वी हैं। उनके शास्त्रास्त्र विद्युत से मंण्डित हैं, वे सोने की माला, सोने के वस्त्राभूषण और शिरस्त्राण धारण करते हैं। वेदों में ऋतुओं के स्वामी और स्वभाव में इन्द्र के विपरीत वरूण देवता को समर्पित मंत्रों से सौन्दर्य का नैतिक

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

पक्ष भी प्रकाशित होता है। ए0एल0 बाशम ने लिखा है –''समस्त आर्य देवताओं में वरूण नैतिक दृष्टि से श्रेष्ठ था। ––वरूण इतना निर्मल एवं पवित्र था कि केवल यज्ञ कर्मों की सम्पूर्ति मात्र से उसकी कृपा का आशवासन असम्भव था। –– वैदिक कवि जब वरूण के पूजा गीतों का पाठ करता था तो वह प्रायः टाट के वस्त्र एवं विभूति धारण करता था और भय एवं कम्प के साथ अपने देवता की प्रार्थना किया करता था क्योकि वरूण पाप का कठोर दण्ड विधाता था।''[2]

वैदिक संस्कृति की सौन्दर्य चेतना का संकेत इस बात से भी मिलता है कि वेदों में विभिन्न कलाओं और शिल्पों की अनेकों स्थानों पर चर्चा की गई है। इससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक संस्कृति के लोग कला प्रेमी थे और विभिन्न कलाओं और शिल्पों में पारंगत थे। वेदों में चित्र, तक्षण (मूर्ति कला) वयन (वास्तुकला) का वर्णन है। काव्य कला का तो वेद ऋचाएं सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। अतः वेदों में सूर्य पुत्री देवी उषा को काव्य कला की अधिष्ठात्री देवी माना गया है जो सुन्दर गीतों की उद्‌बोधक, सुन्दर भावनाओं और समस्त विचारों की प्रेरक हैं। वेदों मे संगीत को नादब्रहम कहा गया है। वेदों में जिस रूप में संगीत की चर्चा की गई है उससे प्रमाणित होता है कि वैदिक काल में संगीत का पर्याप्त विकास हो चुका था। सामवेद संगीत पर आधारित है। ए0एल0 बाशम ने लिखा है–'' वे (आर्य, वैदिक लोग) संगीत प्रेमी थे तथा ढोल और मंजीरों की संगति के साथ–साथ बॉसुरी, बीन और वीणा बजाते थे। वे सप्त स्वरों (सप्तक) का प्रयोग ––––––करते थे। –––गायन, नृत्य तथा नर्तकियों के प्रसंग है जो सम्भवतः व्यावसायिक रही होंगी।''[3] स्वयं वैदिक मंत्रों के गायन व संगीत में सौन्दर्य है जो भौतिक (एन्द्रिय) तथा आध्यात्मिक दोनो प्रकार का आनन्द (सौन्दर्य, रस) प्रदान करता है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति की सौन्दर्य चेतना वैदिक संस्कृति की ऋणी है। आज भारतीय मानस में जो सौन्दर्य बोध और चेतना है प्राथमिक व मौलिक रूप से वैदिक संस्कृति की देन है। सौन्दर्य के सभी, धार्मिक, नैतिक, एन्द्रिय, आत्मिक, मधुर, उदान्त, स्वरूप और आयाम वैदिक मानस में विकसित अवस्था में थे। यद्यपि वे 'सुन्दर' अथवा 'सौन्दर्य' शाब्दों से परिचित नहीं थे। डॉ0 वासुदेशरण अग्रवाल ने लिखा है– ''कला, साहित्य और जीवन के वे समस्त मूल विचार जिनसे भारतीय संस्कृति पल्लवित हुई वैदिक युग में ही स्फुट हुए थे।''[4]

सन्दर्भ

1. डॉ0 नगेन्द्र, भारतीय सौन्दर्यशाास्त्र की भूमिका पे 35, 36।
2. ए0एल0 बाशम, अद्‌भुत भारत, अनुवादक–वैंकटेश चन्द्र पाण्डेय, पे0–197, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1997

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 11 Issue 09, September- 2021
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

3. ए0एल0 बाशम, अद्भुत भारत, अनुवादक वेंकटेश चन्द्र पाण्डेय, पे0—29, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1997

4. डॉ0 वासुदेव शारण अग्रवाल, कला और संस्कृति पे0—223